अष्टाङ्ग-योग

मनुष्य तब तक आध्यात्मिक सत्यों का अनुभव नहीं कर सकता जब तक उसका चित्त कलुषित है और उसकी बुद्धि दूषित विचारों से युक्त है। शुद्ध हृदय तथा तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा ही आत्मा की सत्यता का अनुभव होता है। योगदर्शन इस बात को स्वीकार करता है कि मोक्ष की प्राप्ति आत्मा की सत्यता के ज्ञान से ही हो सकती है। परन्तु यह ज्ञान अथवा प्रज्ञा तभी हो सकती है जब मन से सब दूषित विचार नष्ट हो जाएं तथा मन पूर्णरूप से शान्त और गम्भीर बना रहे। योग दर्शन में योग का अर्थ है- 'राजयोग'। इस दर्शन में योग मार्ग अथवा राजयोग मार्ग की आठ सीढ़ियाँ बताई गयी है, जिनको योग के आठ साधन अथवा 'अष्टाङ्ग साधन' भी कहा जाता है। चित्त अथवा मन की इसी शुद्धता तथा आत्मप्रकाश की प्राप्ति के लिए आचार्य पतञ्जलि ने योग के आठ प्रकार के अंगों का निर्देश किया है-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।
(योगसूत्र 2/29)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये योग के आठ अङ्ग हैं। इन अङ्गों के अनुष्ठान से अविद्या का नाश हो जाता है तथा यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। उपरोक्त योग के आठ अङ्गों का वर्णन निम्न प्रकार से है-

यम- यह योग का प्रथम अङ्ग कहलाता है। बाह्य (बाहरी) और आभ्यन्तर (आन्तरिक) इन्द्रियों के संयम की क्रिया ही 'यम' कहलाती है। योग दर्शन में यम अथवा संयम पाँच प्रकार के बताए गए हैं-

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। (योगसूत्र 2/30)

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं।

'अहिंसा' का मतलब है- किसी भी समय किसी भी प्राणी या जीव की हिंसा (हत्या या कष्ट) नहीं करनी चाहिए। न केवल प्राणियों

की हत्या का त्याग करना चाहिए बल्कि प्राणियों के प्रति किसी भी प्रकार की क्रूरता, कठोरता और निर्दयता का त्याग कर देना चाहिए।

योग दर्शन हिंसावृत्ति को मानव की सभी बुराइयों का आधार या मूल कारण मानता है। इसीलिए योग दर्शन में अहिंसा के पालन पर काफी बल दिया गया है।

'सत्य' का मतलब है- मिथ्या, झूठे या असत्य वचनों का परित्याग कर देना। योग दर्शन के अनुसार- मनुष्य को सदैव ही ऐसे वचनों का प्रयोग करना चाहिए जिससे कि सभी प्राणियों का हित हो जाए। यदि किसी वचन से किसी प्राणी का किसी भी तरह अहित हो रहा हो तो उस वचन को त्याग देना चाहिए। जिस प्रकार आदमी सुने, देखे और अनुमान करे, उसी प्रकार उसे मन का नियन्त्रण करना चाहिए।

'अस्तेय' का अर्थ होता है- किसी दूसरे के या पराए धन को चुराने या धन का अपहरण करने की प्रवृत्ति का त्याग करना। जब किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति पर गलत तरीके से अपना हक जमाया जाता है तो इस प्रकार के अपराध को 'स्तेय' कहते हैं। 'स्तेय' मनोवृत्ति का त्याग ही अस्तेय है।

'ब्रह्मचर्य' योगदर्शन का चौथा यम है। इसका मतलब है कि जो प्रवृत्ति हमको विषय वासना या काम वासना की ओर झुकाती है, उसका परित्याग कर देना चाहिए। ब्रह्मचर्य में कामेच्छा से सम्बन्धित इन्द्रियों के संयम का आदेश योग दर्शन में दिया गया है।

'अपरिग्रह' का अर्थ है- लोभ के कारण इकट्ठी की गयी अनावश्यक वस्तु का त्याग करना। अधिक धन और सुख-सुविधाएँ जीवन में विलासिता ला सकती हैं। उनका अर्जन, संग्रह, संरक्षण और क्षय सब के सब दुःख या अशान्ति कारक हैं। अतः परिग्रह दोष का परित्याग और अपरिग्रह को स्वीकार करना साधना में आवश्यक है।

योग दर्शन के अनुसार जो मानव अपने मन को सब और से योग में सुस्थिर बनाना चाहता है, उसको इन पाँच प्रकार के यम का पालन अवश्य करना चाहिए। इन यमों का पालन करने से व्यक्ति बुरी प्रवृत्तियों को अपने वश में करने में सफल हो जाता है। वह निश्चित-निर्विघ्न और सफलतापूर्वक योग मार्ग पर आगे कदम बढ़ाता रहता है।

नियम- योग दर्शन में 'नियम' को योग साधना का दूसरा महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना गया है। 'नियम' का मतलब और कुछ नहीं बल्कि सदाचार और सद्विचारों को प्रश्रय (प्रोत्साहन) देना ही है। योग दर्शन में पाँच प्रकार के नियमों के पालन की बात कही गयी है-

शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (योगसूत्र 2/32)

अर्थात् शौच (पवित्रता), संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम कहलाते हैं।

'शौच' अष्टाङ्ग योग में सर्वप्रथम नियम शौच है। शौच का अर्थ है- पवित्रता। स्नानादि के द्वारा केवल बाह्य पवित्रता ही यहाँ अपेक्षित नहीं है अपितु आन्तरिक पवित्रता भी अपेक्षित है। इसलिए व्यास ने योगसूत्र-भाष्य में मिट्टी, जल आदि के द्वारा तथा पवित्र आहार के द्वारा बाह्य शुद्धि तथा चित्तमलों के नाश के द्वारा आन्तरिक शुद्धि मानी है-
तत्र शौचं मृज्जलादिजनितं मेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम्, आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्। (योगसूत्र 2/32 पर व्यासभाष्य)

'सन्तोष' अष्टाङ्ग मार्ग का दूसरा नियम है। उचित प्रयास के द्वारा जो कुछ भी प्राप्त हो जाये, उसी में सन्तुष्ट रहना सन्तोष कहलाता है। प्रत्येक परिस्थिति में पूर्णरूप से प्रसन्न रहना, जब जितने साधन प्राप्त हैं उनमें ही तृप्ति का अनुभव करना सन्तोष कहलाता है। व्यास के अनुसार उपलब्ध साधनों से अधिक की प्राप्ति की कामना न करना ही सन्तोष है-

सन्तोषः सन्निहितसाधनादधिकस्यानुपादित्सा।
(योगसूत्र 2/32 पर व्यासभाष्य)

असन्तोषी व्यक्ति मन एवं शरीर से सदैव अतृप्त, दुःखी तथा अशान्त रहता है। ईशोपनिषद् में भी यह उपदेश दिया गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक ही उपभोग करना चाहिए। यह एक प्रकार से सन्तोषवृत्ति धारण करने का ही उपदेश है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से लालच न करने की बात कही गई है-

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृध कस्यस्विद्धनम्। (ईशोपनिषद् 1/1)

तप- तप से तात्पर्य काया को क्लेश देना या घनघोर शीतकाल में जल में खड़े होना अथवा इसी प्रकार की अन्य क्लिष्ट साधनाएँ अपनाना नहीं है। तप का अर्थ है- विविध व्रतों और अनुष्ठानों को करते हुए शरीर और इन्द्रियों से वह सब प्रसन्नता पूर्वक सहना और सहने की इच्छा करना, जिसे जन सामान्य कष्ट मानता है। जो व्यक्ति तप नहीं कर सकता है, वह योगमार्ग में सफल नहीं हो सकता। अनादि काल से चले आ रहे कर्मों के कारण विविध प्रकार के क्लेश और वासनाओं से चित्त ओतप्रोत रहता है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, गर्मी-सर्दी इत्यादि विरोधी द्वन्द्वों को बिना किसी चिन्ता और शोक के सहन करते रहने से वासना और क्लेश क्षीण होने लगते हैं। कर्मवासना और क्लेशरूपी मलों की निवृत्ति के बिना योग में सिद्धि सम्भव नहीं है। तप का आचरण शरीर, वाणी तथा मन तीनों से होना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह तप सात्विक रूप हो, राजस-तामस न हो। योगमार्ग की सफलता के लिए सात्विक तप ही उपयोगी होता है।

तप के इसी महत्त्व को बतलाते हुए गीता में तप के शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तीन भेद करके इन तीनों के पुनः सात्विक, राजस तथा तामस रूप में तीन-तीन भेद किए हैं। गीता के अनुसार देव, द्विज, गुरु तथा विद्वानों का सत्कार करना, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा यह शारीरिक तप है-

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ (गीता 17/14)

वाचिक तप के विषय में गीता में कहा गया है कि किसी को भी कष्ट न देने वाली सत्य, प्रिय तथा हितकर वाणी का प्रयोग करना वाचिक तप होता है-

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ (गीता 17/15)

मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव, मौन, आत्मसंयम तथा भावों की शुद्धि यह मानस तप कहलाता है-

मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ (गीता 17/16)

योगमार्ग हेतु सात्विक तप को अनिवार्य रूप में स्वीकार किया गया है तथा साथ ही यह भी निर्देश किया गया है कि राजस एवं तामस तप का जब तक पूर्णरूप से त्याग नहीं होगा तब तक साधक को सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। सात्विक तप की परिभाषा देते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि फल की कामना छोड़कर परमश्रद्धापूर्वक किया गया तप सात्विक कहलाता है-

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ (गीता 17/17)

'स्वाध्याय' सामान्यतः स्वाध्याय विविध विद्याओं के ग्रन्थों का स्वयं अध्ययन करने को कहते हैं। किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में व्यास के अनुसार स्वाध्याय का तात्पर्य प्रणव आदि मन्त्रों का जप और मोक्ष साधना से सम्बन्धित उपनिषदादि ग्रन्थों का अध्ययन करने से है-

स्वाध्यायः प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा।
(योगसूत्र 2/1 पर व्यासभाष्य)

इसका फल बताते हुए व्यास कहते हैं कि प्रणव का जप करते हुए तथा प्रणवाभिधेय ईश्वर की भावना करते हुए योगी का चित्त एकाग्र हो